बच्चों की भाषा

रश्मि पालीवाल

'हम जैसा सुनते हैं, वैसा बोलते हैं और वैसा ही लिखते हैं? अगर हम हाथी को 'हाँथी', सफेद को 'शफेद', परीक्षा को 'परिक्षा' बोलते हैं तो बच्चों से यह उम्मीद क्यों करते हैं कि वे 'हाँथी' को हाथी लिखें?'

प्राशिका प्रशिक्षण का आखिरी दिन था। कक्षा तीसरी का प्रशिक्षण लेने वाले शिक्षकों के एक समूह से यह चर्चा हो रही थी कि तीसरी में आने वाले बच्चों के साथ भाषा सिखाने में किन बातों पर ध्यान देना होगा, वे किस तरह की गलतियां करते हैं और उन्हें किन बातों में मदद चाहिए होगी?

शिक्षकों ने कहा कि मुख्यतः *व्याकरण* में और *वर्तनी* में मदद करनी होगी।

भाषा शिक्षण का कोई और तीसरा उद्देश्य भी हो सकता है क्या — उपरोक्त दो लक्ष्यों के अलावा?" थोड़ी देर सोचने पर भी मौजूद लोग कोई और लक्ष्य नहीं सोच पाए। "ऐसा कोई लक्ष्य जिस पर हमने तीसरी कक्षा के

प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान भी काफी काम किया है?"

अब भी शिक्षकों के बीच कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई।

बहरहाल जब मैंने कहा कि अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास भी भाषा शिक्षण का एक लक्ष्य माना जा सकता है – तो सबने तुरन्त अपनी थोड़ी झेंप-युक्त सहमति जताई।

अभिव्यक्ति की क्षमता से क्या आशय है, और उसके बारे में क्या करना चाहिए, ये प्रश्न आज नहीं उठाए और न ही शिक्षकों की तरफ से उठे। आठ दिन के प्रशिक्षण में कम-से-कम इस धारणा से उनका परिचय तो हो ही गया था और वे उसे एक हद तक पहचानने भी लगे थे, हालांकि उनके मन में बने-बैठे उद्देश्यों के खाके में इस धारणा ने अभी अपनी जगह नहीं बनाई थी।

सहमति व्यक्त हो जाने पर श्यामपट पर भाषा शिक्षण के तीनों उद्देश्य लिख दिए

व्याकरण वर्तनी अभिव्यक्ति

अब हम यह लेखा जोखा लेने बैठे कि इन उद्देश्यों के लिए अभी तक शिक्षक क्या कदम उठाते आए हैं तथा किसी प्रकार के नए कदम उन्हें सूझे हैं क्या?

वर्तनी: आमतौर पर गलत वर्तनी को सुधार कर बच्चों से कई बार लिखवाया जाता है। किन्तु, इससे समस्या हल नहीं होती। बहुत से बच्चे फिर भी गलत ही लिखते हैं।

क्या कारण हो सकता है? क्या यह कि हम जैसा सुनते हैं, वैसा बोलते हैं और वैसा ही लिखते हैं? अगर हम हाथी को 'हाँथी', सफेद को 'शफेद', परीक्षा को 'परिक्षा' बोलते हैं तो बच्चों से यह उम्मीद क्यों करते हैं कि वे 'हाँथी' को हाथी लिखें? इसमें बच्चे की गलती है या समाज की गलती है? और जिसे हम समाज की गलती कहने को तैयार हो रहे हैं, वो समाज की गलती है या समाज की रीति है?

एक क्षेत्र के समाज की भाषा की रीति को गलत कहने वाला कौन है? किस समूह द्वारा बोली-लिखी गई भाषा 'सही' भाषा होगी और उसकी तुलना में उच्चारण आदि के सारे अन्तर 'गलतियां' मान लिए जाएंगे, यह एक ऐतिहासिक व राजनैतिक मसला है। इस मसले का समाधान शिक्षक द्वारा छोटे बच्चों पर अत्यधिक दबाव बना कर तो हो भी नहीं सकता।

फिर भी इस संबंध में क्या कुछ और नया किया जा सकता है? उदाहरण के लिए तीसरी के बच्चों को बाल पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़ने व देखने का कितना मौका दिया जाता

है? बहुत ही कम स्कूलों में ऐसा कोई प्रयत्न होता है। क्यों न इस ओर अधिक प्रयास करें? पर, अलग-अलग किताबें, खूब सारी किताबें पढ़ने से वर्तनी सुधारने में क्या मदद मिलेगी? शायद यह कि अपेक्षित शब्द रचना को कई बार सहज रुचिपूर्ण ढंग से देखने के साथ-साथ शब्दों की छवि मन मस्तिष्क में बनती-बैठती जाती है। शब्दों के अपेक्षित उदाहरणों से तरह-तरह से परिचित व घनिष्ठ होते रहने से बच्चों को अपेक्षित ढंग से लिखने में भी सकारात्मक सहायता मिलेगी, जबकि सिर्फ अपनी गलत वर्तनी को सुधार कर सैंकड़ों बार नकल करते रहना एक सीमित-सा प्रयास है। हमें कोशिश यह करनी चाहिए कि कई तरह के प्रयास करने के मौके बच्चों को दें।

एक और तरह की कोशिश की जा सकती है, जो आज भी स्कूलों में बहुत कम होती है – वह है ध्वनियों से खेलना। दरअसल वर्तनी द्वारा हम शब्द की ध्वनि को ही तो आकार देते हैं। शब्दों की ध्वनियों के प्रति सजग-सचेत हो जाएं, तो उन ध्वनियों को आकार देने में भी हमारे ज़्यादा सजग-सचेत रहने की संभावना है। तो क्यों न ऐसा करें कि घेरे में बैठकर, मान लीजिए, आपने कहा 'बुन' ... और श्यामपट पर लिख भी दिया 'बुन'... फिर हर बच्चा ऐसी ही मिलती जुलती ध्वनि के शब्द बोले – *गुन – सुन – धुन* – सार्थक भी और निरर्थक भी, सब चलेगा.... नुन, कुन, जुन ... क्योंकि हमारा आशय तो ध्वनि पकड़ने से है। आप इन सब शब्दों को श्यामपट पर लिखते

जाइए। हर बच्चे को बोलने दीजिए, दो-तीन राउन्ड खिलवाइए जब तक मज़ा और नए उदाहरण, दोनों चुकते नज़र न आएं। वर्तनी सुधारने के प्रयास में यह नया प्रयास भी जोड़ा जा सकता है।

व्याकरण: बच्चों को व्याकरण में क्या कठिनाई आती है? मुख्य रूप से बच्चे ऐसे प्रश्नों के सही उत्तर नहीं दे पाते 'स्त्रीलिंग-पुल्लिंग लिखो', 'एकवचन-बहुवचन लिखो'।

सवाल यह है कि बच्चे जब बोलते-बतियाते हैं तब भी क्या वे गलत व्याकरण बोलते हैं? इस प्रश्न पर सबकी राय थी कि ऐसा तो नहीं था। बोलने में वे लिंग या वचन की गलती नहीं करते। तब, सवाल यह नहीं है कि बच्चों को सही व्याकरण कैसे सिखाएं बल्कि सवाल यह है कि बच्चे भाषा का सही उपयोग जानते हैं कि नहीं, इसका मूल्यांकन कैसे करें? मूल्यांकन दो तरह से किया जा सकता है। एक तो परिभाषाओं के माध्यम से किया जा सकता है – यानी स्त्रीलिंग, पुल्लिग, एकवचन, बहुवचन जैसे पारिभाषिक शब्दों के माध्यम से।

दूसरा तरीका है संदर्भों के माध्यम से मूल्यांकन करना। जैसे, बच्चों से कहें कि नीचे लिखे खाली स्थान भरो:

राम आम खाता है।
लड़के आम – – – – हैं।
बादाजी आम – – – हैं।
आम खाती हैं।
तुम आम – – – हो।
मैं आम – – – हूं।
चूहा आया।
बन्दरिया नाची।
चूहिया – – – ।
– – – नाचा।

या, नीचे लिखे वाक्य सुधारो:

पेड़ पर एक चिड़िया बैठी हैं।
पेड़ पर दो चिड़िया बैठी है।

पूरे वाक्य के संदर्भ में सही बात पकड़ना और व्यक्त करना सहज होता है। तीसरी कक्षा के स्तर पर क्या उपरोक्त प्रकार का अभ्यास और मूल्यांकन काफी नहीं माना जा सकता? पारिभाषिक स्तर पर सोचना एक अमूर्त क्रिया है – इसके लिए, आगे की कक्षाओं का समय है बच्चों के पास।

●

साथ ही यह बात भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि उच्चारण की तरह ही व्याकरण भी बच्चे अपने अपने समाज की रीति के अनुरूप ही सीख लेते हैं। यदि गोंड समाज की भाषा की रचना में स्त्रीलिंग, पुल्लिग का भेद नहीं है तो उस समाज के बच्चों को ऐसा भेद करती हुई भाषा का इस्तेमाल करने में समय लगेगा और शायद कई बच्चे बहुत प्रयास के बाद भी, अपनी भाषा रचना में लिंग भेद न ला पाएं। इसके लिए उन्हें व्याकरण

के नियम याद करने व अभ्यास करने से जो सीमित सहायता मिलेगी, उससे ज़्यादा सहायता हिन्दी जैसी अपेक्षित भाषा बहुत बार सुनने, बहुत बार पढ़ने से मिलेगी। जिससे वे अपेक्षित भाषा के तौर तरीकों से घनिष्ठ रूप से परिचित हो जाएं। जो भाषा हम बच्चों को सिखाना चाहते हैं, उससे उनका परिचय कैसे बढ़ाया जाए, और गाढ़ा किया जाए, यह हमारे सोचने की उपयुक्त दिशा होनी चाहिए।

अभिव्यक्ति: हमारे बीच असम के कुछ साथी उपस्थित थे। वे हिन्दी बोलने की कोशिश करते थे, जिसमें स्वाभाविक है, उच्चारण और व्याकरण की काफी भिन्नता होती थी। फिर भी वे हिन्दी भाषा का इस्तेमाल कर रहे थे, अपने को अभिव्यक्त करने के लिए। और हम उनकी बात बहुत कुछ समझ भी रहे थे। यानी भाषा का उपयोग आपसी संप्रेषण के लिए सफलतापूर्वक हो रहा था। भाषा की यह भूमिका भाषा शिक्षण के लक्ष्यों में शामिल होनी ही चाहिए। तो सोचिए कि हम अभी कक्षा में अभिव्यक्ति के विकास के लिए क्या करते हैं?

इस प्रश्न पर शिक्षकों ने सोचा और स्वीकार किया कि इस संबंध में वे कुछ खास नहीं करते! क्या कर सकते हैं? बच्चों से तरह-तरह की चीज़ों पर बातचीत कर सकते हैं,

उनकी बातें सुन सकते हैं। पर वे अभी खुद ज़्यादा कुछ लिख नहीं सकते – इस स्थिति में बच्चे जो कुछ बोलते बताते जाएं वही सब शब्दशः श्यामपट पर या कॉपी में आप लिखते जा सकते हैं – और फिर उन्हीं का बोला हुआ वृत्तान्त उन्हें पढ़ कर सुना सकते हैं।

बच्चों का बोला हम लिखें? यह सुझाव तो काफी चकित करने वाला था – यह तो पहले कभी सोचा नहीं था। इससे क्या होगा? थोड़ा ठिठकने भर से इस क्रिया का महत्व सब के मन में उतर गया था – इसलिए किसी को भी यह कहने की जरूरत महसूस नहीं हुई कि बच्चों की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन, हौंसला और सहायता देने में उपरोक्त सुझाव की कितनी भूमिका होगी।

मूल्यांकन

फिर बात उठी कि भाषा की परीक्षा में बच्चों का मूल्यांकन कैसे करेंगे? किस लक्ष्य के अनुरूप होगा मूल्यांकन? उच्चारण व व्याकरण की शुद्धता और अभिव्यक्ति की क्षमता के लक्ष्य तो एक दूसरे को काटेंगे?

इस बिन्दु पर विचार हुआ और निष्कर्ष कुछ ऐसा निकला कि कुछ प्रश्न अभिव्यक्ति की कुशलता जांचने के लिए निर्धारित किए जाने चाहिए और उन प्रश्नों में वर्तनी-व्याकरण की गलतियों को नज़र-अन्दाज़ करके, अभिव्यक्ति के अनुसार बच्चों को अंक दिए जाने चाहिए।

लंबी चर्चा के अंत में हम सभी को अहसास हो रहा था कि जिस काम से बच्चे आत्मविश्वास और बेहिचकपन पा सकते हैं, दुनिया की बातों को समझ सकते हैं और अपनी बात दुनिया के सामने रख सकते हैं, उसी काम पर स्कूल में ध्यान कम दिया जाता है। और जो बातें बच्चों के बस के बाहर हैं और जिनका दबाव उन्हें भयभीत व कमज़ोर बनाता है, स्कूल में उन्हीं बातों पर ज़ोर अधिक है। भाषा शिक्षा की सामाजिक प्रक्रिया पर विचार करके, उसे समझ के, क्या हम इस असंतुलन को कुछ ठीक कर सकते हैं?

यह बातचीत एकलव्य के प्राथमिक शिक्षण कार्यक्रम के तहत आयोजित शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान की गई।

रश्मि पालीवाल – एकलव्य के सामाजिक अध्ययन शिक्षण कार्यक्रम समूह की सदस्य हैं।